अनार

70

100/-

एक और पहलू

(मेरे सात जन्म : हंसराज रहबर : पृष्ठ 453-454 से)

उन दिनों श्रीराम कामर्शियल कॉलेज दरियागंज में स्थित था। वहाँ एक मुशायरा हुआ। दिल्ली का जिलाधीश महेन्द्र सिंह बेदी, जो 'सहर'तख़ल्लुस रखकर शायरी-वायरी भी करता था, मुशायरे का अध्यक्ष था । दरअसल मुशायरों का आयोजन और उनकी अध्यक्षता करना बेदी की प्रिय हॉबी थी । मुशायरों से शोहरत और पैसा दोनों मिलते थे, इसलिए प्रगतिशील शायर जिलाधीश बेदी की चिरौरी किया करते थे । मुशायरे के बाद साहिर, प्रकाश पंडित और मैं, बेदी के साथ एक पार्टी में गए जिसकी व्यवस्था 'मोती महल' वालों ने अपने होटल के पिछवाड़े में की थी ।

शराब के अलावा मुर्गा, मछली और नान इत्यादि की पुरतकल्लुफ़ दावत थी । साहिर अपनी आदत के अनुसार एक पैग आगे रखकर उसे धीरे-धीरे सिप करता रहा, लेकिन बेदी, पंडित और मैंने जी भर कर पी । जब नशा चमका तो प्रकाश पंडित फूट पड़ा।

''बेदी साहब, आपने 'शाहराह' का पहला पर्चा देखा?''

''हाँ देखा।''

''इस शख़्स ने'' प्रकाश पंडित ने साहिर की तरफ इशारा किया, ''अपने साथ एडीटर के नाते मेरा नाम देने के बजाय, उस साल्ले रामप्रकाश अश्क का नाम दे दिया, हालाँकि सारा काम मैंने किया।''

''यह तो वाकई ज्यादती है,'' बेदी ने उसका समर्थन किया और साहिर से पूछा, ''भई, क्यों नहीं दिया इसका नाम?''

इससे पहले कि साहिर कोई उत्तर दे, या उत्तर शायद वह देना ही नहीं चाहता था, प्रकाश पंडित फिर बोला : बेदी साहब, ज्यादती ही नहीं सरासर बेइंसाफ़ी है । आपको शायद मालूम नहीं कि मैं अपनी जान खतरे में डालकर लाहौर गया और इस शख़्स की माँ और बहन को वहाँ से हवाई जहाज के जरिए निकालकर दिल्ली लाया ।''

मैं जानता था कि 'शाहराह' का प्रूफ पढ़ने और ख़त इत्यादि लिखने का सारा काम प्रकाश पंडित करता था । जबकि अश्क ने और खुद साहिर ने तिनका तक नहीं तोड़ा । लेकिन साहिर के भाग आने के बाद, उसकी माँ और बहन को लाने के लिए प्रकाश पंडित जोखिम उठाकर पाकिस्तान गया, यह मुझे भी आज पहली बार मालूम हुआ।

शेष अंतिम भीतरी आवरण पर...

अकार

विचारशीलता और बौद्धिक हस्तक्षेप का उपक्रम

सम्पादक
प्रियंवद

उप सम्पादक
जीवेश प्रभाकर

वर्ष : 25 - अंक : 70
मई-2025

यह अंक
https://notnul.com
पर उपलब्ध है ।

अकार की सदस्यता संबंधी जानकारी–

एक प्रति	- 100 /- रु.
वार्षिक सदस्यता (तीन अंक)	- 500/- रु.
संस्थागत वार्षिक सदस्यता (तीन अंक)	- 800/- रु.
तीन वर्ष की सदस्यता (व्यक्तिगत)	- 1200/- रु.
तीन वर्ष की सदस्यता (संस्थागत)	- 1800/- रु.
आजीवन सदस्यता (व्यक्तिगत)	- 3500/- रु.
संस्थागत आजीवन सदस्यता	- 5000/- रु.

(पत्रिका के समस्त सदस्यता शुल्क मे रजिस्टर्ड पार्सल का डाक खर्च सम्मिलित है।)

आप 'अकार' के लिये धन राशि अपने क्षेत्र के 'बैंक ऑफ बड़ौदा' की किसी भी ब्रांच में जमा करा सकते हैं। 'अकार' के खाते के ब्यौरे नीचे दिए जा रहे हैं। आपको 'अकार' के खाते में राशि जमा कराने के लिये शुरू के चार ब्यौरों की जरूरत पड़ेगी। नेट द्वारा जमा कराने पर शेष दो ब्यौरे भी काम आएंगे।

Name of the Firm which Holds the bank Account :- AKAR PRAKASHAN
Bank Name :- Bank of Baroda, Bank Adress :- Panki, Site - 1, Kanpur - 208002.,
Bank Account No.- 09620200000089 MICR Code :- 208012012
IFSC Code :- BARB0PANKIX (0 is ZERO, NOT ALPHABETICAL O)

प्रकाशक : अकार प्रकाशन, B -204, रतन सैफ़ायर,16/70,सिविल लाइन्स कानपुर - 208001
ई मेल - akarprakashan@gmail.com

सम्पर्क :
प्रियंवद
B -204, रतन सैफ़ायर,,16/70, सिविल लाइन्स कानपुर - 208001
ई मेल - priyamvadd@gmail.com (मो.) 9839215236

जीवेश प्रभाकर :
69/2113, रोहिणीपुरम -2, रायपुर-492001 (छ.ग.)
ई मेल - jeeveshprabhakar@gmail.com मो. - 09425506574
आवरण :- जीवेश प्रभाकर
मुद्रक
सांखला प्रिंटर्स, विनायक शिखर, बीकानेर - 334003, फोनः - 0151-2242023
कम्पोज़िंग
विकल्प विमर्श, 87 निगम कॉलोनी, रायपुर - 492 001
सम्पादन व संचालन अवैतनिक । समस्त विवाद कानपुर न्याय क्षेत्र के अन्तर्गत होंगे । पत्रिका में प्रकाशित सामग्री के विचार सम्बन्धित लेखक के अपने हैं । सम्पादक अथवा प्रकाशक का उससे सहमत होना अनिवार्य नहीं है ।

अनुक्रम

1. **अकथ :** गहराते अंधेरों के चौदह दिन - *प्रियंवद* 06

2. **लेख :** आसमान से उतरती संस्कृति - *विजय कुमार* 23

3. **लेख :** आदिवासी लोक चित्रकला का परिचय - *मुश्ताक़ ख़ान* 34

4. **लेख :** लाग की आग - *लाल्टू* 50

5. **संस्मरण :** अयोध्या प्रसाद खत्री : फिल्म और आयोजन से जुड़ी कुछ स्याह परछाइयाँ - *वीरेन नंदा* 59

6. **रचना यात्रा** : मुक्तिबोध से मैत्री की माँग - *जयप्रकाश* 75

7. **कविता :** काव्य रचना का भेद - *राकेश भारतीय* 92

8. **लेख :** तीजन गाथा - एक कलाकार के संघर्ष का आख्यान - *राजेंद्र सोनबोइर* 95

9. **लेख :** विप्लव-युद्ध में अर्द्धांगिनियां - आंचल को परचम बनाने वाली क्रांतिकारी विरासत - *सुधीर विद्यार्थी* 126

10. **समीक्षा लेख :** झारखंड आंदोलन के कुछ दुर्लभ दस्तावेज - *रविभूषण* 136

गहराते अंधेरों के चौदह दिन - (1)

(तीन अंकों में समाप्त लेख की पहली कड़ी)

26 जनवरी 2025 को देश के संविधान और गणतन्त्र रूप के 75 वर्ष पूरे हो गये हैं । इस गर्वपूर्ण व सुखद अवसर पर, हमारे पास एक मौका है कि हम अपने गणतन्त्र व संविधान की उपलब्धियों और सफलताओं या बिखराव और असफलताओं का एक निष्पक्ष लेखा जोखा करें । हमारे पास यह आकलन करने का भी मौका है, कि इन 75 वर्षों में हमने अपने संविधान की मूल आत्मा और देश के नागरिकों की स्वतन्त्रता, गरिमा व जीवन को अर्थ देने वाले मौलिक अधिकारों को कितना सुरक्षित रखा? हमारे गणतन्त्र को रूप देने वाली चुनाव की लोकतांत्रिक प्रणाली, नागरिकों के जीवन व हितों को सुरक्षित करने, उनके हाथों में अधिक शक्ति देने में कितनी समर्थ और सक्षम हुयी? क्या इन 75 वर्षों के बाद, इस लोकतन्त्र में समस्त शक्तियाँ जनता के हाथों में हैं जो लोकतन्त्र की पहली शर्त और प्रखरतम अभिव्यक्ति है? कहीं ऐसा तो नहीं हुआ कि समय-समय पर बदलती सरकारों और उनके शिखर पर बैठे नेताओं ने, इन शक्तियों को जनता के हाथों से छीन कर अपनी मुट्ठियों में दबोच लिया है? लोकतंत्र की आड़ में ही, जनता को इस तंत्र द्वारा दिए गये अधिकारों के भ्रष्ट अर्थ निकाल कर, उसे विकृत या कुरुप करते चले गए? क्या विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका ने इस संविधान को हर तरह का नैतिक कवच देते हुए अपने कर्तव्यों का पालन किया? हम इसका भी लेखा जोखा कर सकते हैं कि इन 75 वर्षों में ऐसी कौन सी घटनाएँ हुयीं, ऐसे कौन से व्यक्ति हुए, जिन्होंने पूरी निर्लज्जता और क्रूरता के साथ, संविधान के प्रावधानों का भरपूर दुरुपयोग करते हुए, उसकी आत्मा और उसके बुनियादी ढाँचे पर घातक प्रहार किया। नार्सिसस की ग्रन्थि से पीड़ित, आत्ममुग्ध होकर,

स्वेच्छाचारी, निरंकुश शासन करने की हवस में समस्त शक्तियाँ अपने में केन्द्रित कर लीं। संविधान संशोधनों के बहाने वे तानाशाही की ओर कदम बढ़ाते गए। आगे हम संविधान और लोकतन्त्र के इसी पक्ष पर बात करेंगे । हम देखेंगे कि किस तरह संविधान के केवल 25 वर्ष पूरे होने के बाद, 25 जून 1975 की आधी रात को आपात्काल का लगाया जाना, इस देश के लोकतन्त्र के बुनियादी ढाँचे पर पहला घातक प्रहार था । यह क्यों, कैसे, किस प्रक्रिया से, किस तरह संभव हुआ, इसकी एक बहुत बाहरी रूपरेखा बनाते हुए, हम इसे जानेंगे । यह बेहद जरूरी है कि इन सच्चाइयों को तथ्यों और प्रामाणिकता के साथ जाना जाए, न कि अफवाहों, चरित्र हनन और निजी स्वार्थों की रोटियाँ पकाने के लिए जलाए जाने वाले चूल्हों की आँच और रोशनी में इसे देखा जाए। अपने देश की इस पहली सबसे महत्त्वपूर्ण राजनीतिक घटना को अगर हम संविधान और लोकतन्त्र के दायरे में नहीं समझेंगे, तो भविष्य में हम बार बार उन फन्दों में फँसते चले जाएंगे, जो सरकारें अपने हितों के लिए नागरिकों का दम घोटने के लिए हर समय बुनती हैं। इंदिरा गाँधी का आपात्काल ऐसी ही कोशिश की पहली घटना थी । वास्तव में आपात्काल इंदिरा गांधी की तानाशाही प्रवृत्ति के परिचय से अधिक, भारतीय लोकतन्त्र की असफलता की गूँज था। सिर्फ 25 सालों में ही विकृत और कुरूप कर दिया गया उसका चेहरा था । उसके अविकसित होने या अधूरेपन का उद्घोष था । धीरे धीरे देश में असफल होते चले गए लोकतन्त्र की परिणति यदि आपात्काल में न भी होती, तो इसकी असफलता किसी और त्रासद रूप में सामने आती। भारतीय लोकतंत्र की नाकामी या कमियों, अस्पष्टताओं और संविधान में कुछ बातें भविष्य में तय होने के लिए छोड़ देने के कारण, यह लावा किसी और रूप में फूटता ।

ऐसा क्यों हुआ कि संविधान लागू होने के 25 वर्ष बाद ही यह देश संविधान सभा में घोषित व तय किये गए लोकतंत्र के बुनियादी उद्देश्यों, आदर्शों और स्वरूप को सहज रूप से संभाल भी नहीं सका, जब कि उसने जहाँ से अपने लिए संविधान और लोकतंत्र के ढाँचे चुने थे, उन देशों में सदियों से लोकतंत्र सुचारू रूप से सक्रिय है, गतिशील है, प्रभावी है? भारत में फिर यह इतनी जल्दी असफल होता क्यों दिखने लगा? क्या इसलिए कि संविधान बनाने वालों ने देश की विषम, जटिल, क्रूर सच्चाईयों को नज़दीक से न समझते-जानते हुए, उत्तेजना और उत्साह में अपनी आँखों से ज्यादा बड़े सपने देख लिए? क्या इसलिए कि प्रत्येक वयस्क नागरिक को मत का अधिकार देते हुए, उन्होंने स्वतंत्र भारत के इस नागरिक के अंदर भविष्य के किसी विवेकवान, जागृत, संवेदनशील महामानव के दर्शन कर लिए? क्या इसलिए कि उन्होंने हजार वर्षों से ढोयी जाती, दहला देने वाली गरीबी, पथरायी जड़ता, सामाजिक असमानता, जाति के अमानवीय भेदभाव, नसों में दौड़ता सामंतवाद, चेतना को अपने अंधेरों से ढकने वाला कई पर्तों का अंधविश्वास, परम्पराओं के नाम पर असंख्य कुरीतियों और धर्म के निरर्थक कर्मकांडों में मुक्ति ढूँढने वाले, विभिन्नताओं से भरे समाजों में नयी चेतना, जाग्रत विवेक, प्रगतिशीलता और अलौकिक